2

वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा का अधिकार और सामाजिक-आर्थिक बदलाव की संभावना
एक आलोचनात्मक विमर्श

संजीव कुमार भारद्वाज*

भारत विविध संस्कृतियों वाला देश है, जो अनेक प्रादेशिक व स्थानीय संस्कृतियों से मिलकर बना है। लोगों के धार्मिक विश्वास, जीवन शैली व सामाजिक संबंधों की समझ एक-दूसरे से बहुत अलग है। सभी समुदायों को सह-अस्तित्व व समान रूप से समृद्ध होने का अधिकार है। इस संदर्भ में शिक्षा व्यवस्था भी हमारे देश में इस सांस्कृतिक विविधता के अनुरूप होनी चाहिए। भारत का संविधान सभी नागरिकों को स्थिति व अवसर की समानता का आश्वासन देता है। शिक्षा की परिधि से बच्चों की विशाल संख्या का बाहर होना, शिक्षा पाने के अवसरों के वितरण की स्थिति और जाति, वर्ग, जेंडर के आधार पर सामाजिक भेदभाव, समानता के इस मूल्य को बाधित करता है। इस अर्थ में शिक्षा की भूमिका सामाजिक बदलाव व समतावादी व्यवस्था लाने वाली होनी चाहिए। प्रस्तुत लेख इसी मुद्दे के संदर्भ में शिक्षा-चिंतन को एक दिशा देने का प्रयास है।

नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 से शिक्षा, जीवन के एक बेहद महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिष्ठापित हुई है। यह कानून शिक्षा को केवल मौलिक अधिकार के रूप में ही मान्यता नहीं देता, अपितु उसे जीवन के अधिकार (अनु.21) से जोड़कर देखता है। इतने महत्वपूर्ण कानून को लेकर शिक्षाविद् एवं नीति-निर्माता अकसर दो खेमों में बंटे रहे हैं। एक वर्ग जहाँ इसकी अनिवार्यता एवं प्रासंगिकता को लेकर समर्थन करता है, वहीं एक अन्य वर्ग एकाधिक कारणों से इसकी आलोचना करता रहता है। 1 अप्रैल 2010 से लागू इस कानून के संदर्भ में यह विमर्श इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि क्या सचमुच पिछले 7–8 वर्षों में व्यावहारिक रूप से यह कानून अपने लक्ष्यों, उद्देश्यों एवं दृष्टिकोण के साथ न्याय कर पाया है? यह लेख भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में इस कानून के प्रावधानों की प्रासंगिकता का एक आलोचनात्मक अध्ययन है। पिछले कुछ समय से बच्चे या शिक्षार्थी की प्रकृति को लेकर शैक्षिक प्रक्रिया में जो परिवर्तन आ रहे हैं, जो नयी दृष्टियाँ

**स्वतंत्र लेखक*, कमरा नंबर 12, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विकसित हुई हैं, उनकी इस कानून में कितनी जगह है, यह देखना भी इस लेख का एक विषय रहा है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ़.) 2005 से निर्धारित पाठ्यचर्या की प्रकृति को क्या इस कानून की वजह से शैक्षिक विमर्श में एक नयी जगह मिली है तथा इस तथ्य की खोज करने का प्रयास भी इस लेख में किया गया है। पाठ्यचर्या वस्तुतः शैक्षिक नीतियों का विषय है, अधिनियम आमतौर पर पाठ्यचर्या की बात नहीं करते पर शिक्षा का अधिकार इस मायने में विशिष्ट है कि इसका एक पूरा (पाँचवाँ) अध्याय पाठ्यचर्या पर केंद्रित है। पाठ्यचर्या का सीधा संबंध इस बात से है कि हम अपने समाज को किस रूप में देखते हैं और किस तरह के समाज की कल्पना से प्रेरित रखना चाहते हैं।

इस तरह पाठ्यचर्या अपने आप में बेहद व्यापक संकल्पना है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम में उल्लेखित पाठ्यचर्या के कुछ मुख्य पहलुओं, जैसे संवैधानिक मूल्यों से अनुरूपता, मातृभाषा में शिक्षण, बाल-केंद्रित शिक्षण और मूल्यांकन की प्रक्रिया पर इसी संदर्भ में बात की जा सकती है।

संविधान से प्रतिष्ठापित मूल्यों से अनुरूपता

"लोकतंत्र प्रत्येक व्यक्ति में मनुष्य के रूप में सम्मान व योग्यता में आस्था पर आधारित होता है — अतः लोकतांत्रिक शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति का पूर्ण व चहुँमुखी विकास अर्थात् एक ऐसी शिक्षा जो विद्यार्थियों को एक समुदाय में जीने की बहुआयामी कला में दीक्षित करे। बहरहाल यह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति अकेले न तो रह सकता है और न ही विकसित हो सकता है — उस शिक्षा का कोई लाभ नहीं जो अपने साथी नागरिकों के साथ शालीनता, सामंजस्य, कार्यकुशलता के साथ जीने की शैली के लिए आवश्यक गुणों को पोषित न करती हो।" (माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952–53, पृ. 20)

जैसाकि शुरुआत में बताया गया है कि भारत में अनेक संस्कृतियाँ हैं, लोगों की जीवन शैली में भिन्नता है वैसे ही शिक्षा में भी लचीलापन ज़रूरी है। सभी को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय उपलब्ध कराना लोकतंत्र को दृढ़ करने के लिए अनिवार्य है। कार्य व विचारों की स्वतंत्रता हमारे संविधान में निहित एक मूलभूत सत्य है। लोकतंत्र ऐसे नागरिक रचता है, जो स्वतंत्र रूप से अपने लिए निर्धारित उद्देश्यों को पाने के लिए कार्य कर सकें और दूसरों के इस अधिकार का सम्मान करें।

एक नागरिक के लिए यह अनिवार्य है कि वह समाज में भाईचारे की भावना प्रोत्साहित करने के लिए समानता, न्याय व स्वतंत्रता के सिद्धांतों को आत्मसात् करे। नागरिकता की अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए जीरोक्स कहते हैं कि शिक्षा व शिक्षक का यह दायित्व है कि उनके विद्यार्थी ऐसे नागरिक बन सकें, जो सोच सकें, स्थापित चीज़ों को चुनौती दे सकें, कर्मठ बन सकें, आगे बढ़कर जोखिम ले सकें और जो यह विश्वास कर सकें कि उनके कार्य समाज में बदलाव ला सकते हैं (जीरु, 2005)। भारत एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है। इसका अर्थ है कि यहाँ सभी आस्थाओं का आदर किया जाता है। इस अर्थ में यह ज़रूरी है कि पाठ्यचर्या ऐसी हो, जो बच्चों में सभी लोगों के प्रति चाहे वह किसी

भी धर्म के हों, समान आदरभाव विकसित कर सके (*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*)। शिक्षा के अधिकार में पाठ्यचर्या को भारत की इस धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और सामाजिक संस्कृति को बनाए रखने एवं सामाजिक समता व न्यायपूर्ण समाज की ओर बढ़ने के माध्यम के रूप में देखा जा सकता है।

मातृभाषा में शिक्षा

यूनेस्को के शैक्षणिक आधार पत्र (2003) के अनुसार प्रारंभिक शिक्षण के लिए मातृभाषा अत्यंत आवश्यक है और इसे जहाँ तक बरकरार रखा जा सके, बरकरार रखा जाना चाहिए। शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन (1949) में सर्वसम्मति से स्वीकारा गया कि अल्पसंख्यक बोली-भाषा के बच्चे को अपनी बोली-भाषा में शिक्षा प्राप्त करने का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है (कोठारी आयोग, भारत सरकार, 1964–1966)। आरंभिक स्तर पर ही 26 प्रतिशत बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं और इसकी एक बड़ी वजह है—शिक्षा में दिलचस्पी का न होना, जिसके लिए मुख्य रूप से ज़िम्मेदार हैं—मातृभाषा में अपनी सांस्कृतिक विषय-वस्तु का अभाव। कारण वस्तुतः यह है कि भाषा 'संस्कृति' का एक अवयव मात्र नहीं, बल्कि 'संस्कृति की संवाहक' भी होती है। यदि मातृभाषा में शिक्षण हो तो घर की भाषा से स्कूल की भाषा की ओर बढ़ना ज़्यादा अच्छी तरह संभव हो सकता है। माध्यम के रूप में मातृभाषा का उपयोग घर में बोली जाने वाली भाषा और स्कूल में बोली जाने वाली भाषा के बीच के अंतर की वजह से उत्पन्न भाषिक और सांस्कृतिक फ़ासले को मिटा सकता है। अर्थात् संदर्भ के लिए बिंदु अल्पसंख्यक भाषा या बहुसंख्यक भाषा हो सकती है। झींगरन (2005) के अनुसार लगभग 12 प्रतिशत बच्चे शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं क्योंकि उन्हें अपनी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्राप्त नहीं होती। इस तरह से प्रभावित होने वाले बच्चों की संख्या अच्छी-खासी है। माध्यम के रूप में शिक्षा में कठिनाई महसूस करने वाले ऐसे बच्चे विविध श्रेणियों से आते हैं, जैसे—प्रवासी माता-पिता के बच्चे और सिंधी, कश्मीरी, डोगरी और कोंकणी आदि भाषाएँ बोलने वाले बच्चे (उषा, 2019)।

भारत के संविधान की धारा 350(क) में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक प्राधिकारी भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा। संविधान का यह संकल्प वस्तुतः 1960 तक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण को संभव कर सकने के लिए था। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 भी भारत की बहुभाषिकता को सम्मान देते हुए सिफ़ारिश करती है कि अगर स्कूल में उच्चतर स्तर पर बच्चों की घरेलू भाषा(ओं) में शिक्षण की व्यवस्था न हो सके, तो कम से कम प्राथमिक स्तर की शिक्षा तो अवश्य ही घरेलू भाषा(ओं) के माध्यम से दी जानी चाहिए। बालकों का निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, मातृभाषा शिक्षण पर बल देते हुए अध्याय 5, धारा 29(च) में प्रावधान करता है कि शिक्षा का माध्यम जहाँ तक साध्य हो बालक की मातृभाषा में होगा। मातृभाषा में शिक्षा की व्यवस्था देने वाला यह प्रावधान एक तरह से स्कूल से

बाहर उन बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा सुनिश्चित कराने का प्रयास है, जो भाषा की बाधा के कारण इससे वंचित हैं। दूसरी ओर झींगरन (2005) ने दिखाया है कि यह बच्चे मूलतः वंचित हाशिए पर रहने वाले समाज से ताल्लुक रखते हैं। इस मायने में यह प्रावधान सामाजिक समता लाने की ओर उठाया गया एक कदम भी है। कृष्ण कुमार कहते हैं कि यह प्रावधान वस्तुतः त्रिभाषा सूत्र को नए सिरे से विमर्श में लाता है। यह प्रावधान एक राज्य में दूसरे राज्य की भाषा के लिए पर्याप्त व्यवस्था के संवैधानिक प्रावधान को गति देता है। बिहार के मज़दूर अगर असम में काम कर रहे हैं तो उनके बच्चों को पढ़ाने के लिए असम सरकार को बिहार की भाषा जानने वाले शिक्षक भर्ती करने पड़ेंगे। इस अर्थ में राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को गति मिलेगी।

भारत की बहुभाषिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में मातृभाषा में शिक्षण एक उपाय भी है, जिससे भाषिक विविधता के इस संसाधन का उपयोग ज्ञान संपदा को समृद्ध करने में किया जा सकता है। यह विदित है कि उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का एक भाषा से दूसरी भाषा में आसानी से स्थानांतरण हो सकता है। मातृभाषा में शिक्षण एक बहुभाषा-भाषी समाज में अन्य भाषाओं को सीखने के स्तर पर भी सहायक होगा। इस तरह यह प्रक्रिया न केवल अपनी सांस्कृतिक धरोहर से जुड़ने, बल्कि दूसरों के प्रति संवेदनशील बनने का अवसर देती है। इस संदर्भ में भी निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का यह प्रावधान एक बहुसांस्कृतिक समाज में लोकतांत्रिक दृष्टि विकसित करने का प्रयास है।

बाल-केंद्रित शिक्षण शास्त्र

"बच्चा अपने आप को दूसरों से जोड़ कर सीखता है जिससे उसकी समझ बनती है, वह कार्य कर पाता है और स्वयं का रूपांतरण कर पाता है। समाज में हर एक पीढ़ी को विरासत में संस्कृति और ज्ञान का भंडार मिलता है, जिसे वह अपनी गतिविधियों तथा समझ में समाहित करते हुए नया ज्ञान रचने की सार्थकता महसूस करता है" (*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, पृ.14)। बाल-केंद्रित शिक्षण शास्त्र बच्चों के अनुभवों, उनकी आवाज़ों और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता के तौर पर रखता है। शिक्षा का नियोजन बच्चों के मानसिक विकास एवं रुचियों के मद्देनज़र हो, बाल-केंद्रित शिक्षण शास्त्र भी ऐसी अपेक्षा करता है। सीखना अपने आप में एक सक्रिय व सामाजिक गतिविधि है। बच्चा संसार का ज्ञान ग्रहण करता है और नए ज्ञान का सृजन करता है इसलिए पाठ्यचर्या का जुड़ाव अनिवार्य रूप से बच्चे की सक्रियता व रचनात्मक क्षमता के पोषण व उसके संवर्द्धन से है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 शिक्षण प्रक्रिया की उस व्यवस्था का भी विरोधी है, जिसमें बच्चे की आवाज़ व अनुभवों को कक्षा में अभिव्यक्ति नहीं मिलती। प्रायः केवल अध्यापक का ही स्वर सुनाई देता है। अध्यापक को ज्ञान का भंडार माना जाता है। बच्चे एक खाली बर्तन के समान हैं, जिन्हें अध्यापकीय ज्ञान से स्वयं को भरना है। बोलते हैं तो

केवल अध्यापक के शब्दों को दोहराने या सवालों के जवाब देने के लिए। वस्तुतः जितना महत्वपूर्ण सवाल यह है कि 'क्या पढ़ाया जाता है?' उतना ही महत्वपूर्ण यह देखना भी है कि 'कैसे पढ़ाया जाता है?' पाठ्यपुस्तकों को ज्ञान का एकमात्र स्रोत मान कर बच्चे की भूमिका पाठ्यपुस्तकों के तथ्यों को रट जाने की होती है और शिक्षक की भूमिका पाठ्यपुस्तकों की सूचनाओं को ज्यों का त्यों परोस देने की। पाठ्यपुस्तक केंद्रित इस शिक्षण शास्त्र ने बच्चों को उनके दैनिक व व्यावहारिक जीवन से जोड़ने की कोशिश नहीं की। बाल-केंद्रित शिक्षण नीति पाठ्यपुस्तक की इस केंद्रीय भूमिका को अस्वीकार करती है। इस उपागम के अनुसार बच्चे अपने पर्यावरण से प्रत्यक्ष रूप से जुड़कर ज्ञान सृजन की प्रक्रिया करें तथा अपने संज्ञानात्मक विकास व समझ के अनुसार चीज़ों के अर्थ खोलें। इस तरह यह उपागम कक्षा में बच्चों को एक सक्रिय सहभागी के रूप में देखता है। यह सक्रिय सहभागिता ही बच्चे के शारीरिक, मानसिक व भावात्मक विकास को सुनिश्चित करेगी। अध्यापक की भूमिका इस शिक्षण शास्त्र में ऐसे मार्गदर्शक व सहयोगी के तौर पर है, जो बच्चों को ज्ञान का सृजन करने व उनके सर्वांगीण विकास के लिए हर संभव सहायता करेगा।

निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, अध्याय 5, धारा 29(च) में इसी बाल-केंद्रित शिक्षण शास्त्र का प्रावधान है, ताकि बच्चों के भीतर की स्वाभाविक जिज्ञासा, अपने पर्यावरण के साथ उनकी अंत: क्रिया और चीज़ों को अर्थ देने की उनकी स्वाभाविक क्षमता का विकास हो तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में उनकी सक्रिय भागीदारी हो।

अध्याय 5, धारा 29, उपधारा(2) शिक्षा प्राधिकारी, उपधारा(1) के अधीन पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया अधिक्रमित करते समय शिक्षा प्राधिकारी निम्नलिखित बातों का ध्यान रखेगा —

(क) बालक का सर्वांगीण विकास

(ख) बालक के ज्ञान, अंत:शक्ति, योग्यता का निर्माण

(ग) पूर्णतम मात्रा तक शारीरिक और मानसिक योग्यताओं का विकास

(घ) बाल-अनुकूल और बाल-केंद्रित रीति में क्रियाकलापों के प्रकटीकरण और खोज के द्वारा शिक्षण

प्रोफ़ेसर यशपाल की अध्यक्षता में गठित समिति की रिपोर्ट *लर्निंग विदाउट बर्डन* (1993) ने चिंता व्यक्त की थी, पढ़ाया तो बहुत जाता है, लेकिन उसमें से थोड़ा-ही सीखा और समझा जाता है। पढ़ाने और समझने का यह जो अंतर है वह वास्तव में शिक्षा के सूचना केंद्रित हो जाने के कारण है। पाठ्यक्रम 'पूरा' तो कराया जाता है, लेकिन इस 'पूरा' कराने में खोज या जिज्ञासा की भूमिका कहीं नहीं है। *लर्निंग विदाउट बर्डन* की रिपार्ट के अनुसार, बस्ते का बोझ एक मुद्दा है, लेकिन इससे भी घातक है — 'जो पढ़ाया गया है उसका समझ में न आना।' समझ में न आने के इस दबाव के चलते भी पढ़ाई बीच में छोड़ देने की प्रवृत्ति भी अकसर देखी जा सकती है। समझ में न आने के दबाव का एक और पहलू ज्ञान या स्कूल गतिविधियों का बच्चे के परिवेश या उनके संदर्भ से अलगाव भी है। यहाँ जानना ज़रूरी है कि बच्चा जो करता है, वह

आखिर क्या सोचकर करता है। बच्चे की सीखने की प्रक्रिया व उसकी सोच के साथ साम्यता शिक्षण विधि के लिए बहुत ज़रूरी है। निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 समझ में न आने के इस दबाव और इसके कारण स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों के लिए विकल्प के रूप में देखा जा सकता है। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम विद्यार्थी केंद्रित कक्षा की संकल्पना करता है। ऐसी कक्षा, जिसमें व्यवहारवाद के विकल्प के तौर पर खोजपूर्ण स्थितियों का संयोजन किया जाए। ऐसी कक्षा, जिसमें बच्चे खुद ज्ञान के आविष्कारक बन जाएँ। ड्यूवी (1916) मानते हैं कि दरअसल खुद करके देखना ही किसी विद्यार्थी के लिए ज्ञान-सृजन का सबसे अच्छा माध्यम है। पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना, वाद-विवाद, व्यावहारिक प्रयोग व ऐसा चिंतन जिससे सिद्धांत बन सके और विचार/स्थितियों की रचना हो सके — ये सभी बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करते हैं। स्कूलों द्वारा ऐसे अवसर प्रदान किए जाने चाहिए, ताकि बच्चे प्रश्न पूछकर, चर्चा करके एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात् करें या नए विचार रखें और रचें। इस तरह ज़रूरी नहीं कि वे सभी प्रश्नों के एक समान उत्तर दें। बच्चे प्रश्नों के उत्तर अपने संदर्भों और अनुभवों से जोड़कर देते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही गतिविधि और प्रश्नोत्तर पद्धति का नियोजन किया जाना चाहिए।

सतत एवं व्यापक आकलन

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अनिवार्य संबंध मूल्यांकन से है। भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। बोर्ड की परीक्षाएँ तो लगभग भय का पर्याय ही हैं। परीक्षा में प्राप्त अंक एक ओर व्यक्तिगत उपलब्धि और योग्यता बताते हैं दूसरी ओर इन अंकों को सामाजिक हैसियत में एक कारक के तौर पर भी देखा जाता है। पिछले दिनों मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा परीक्षा एवं टेस्ट पद्धति में सुधार करने के प्रयासों को इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। एक अच्छी मूल्यांकन प्रक्रिया, सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है, जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा-तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि से फायदा हो सकता है। रिफ़्लेक्टिव टीचिंग एक स्तर पर यदि शिक्षार्थी की समझ का आकलन है, तो दूसरे स्तर पर अध्यापक और उसकी शिक्षण विधि के बारे में प्रतिपुष्टि भी है (पोलार्ड, 2008)। आकलन और मूल्यांकन का प्रयोजन निश्चित ही सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं एवं सामग्री का सुधार करना है। इसके साथ ही उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार भी करना है, जो स्कूल के लिए तय किए गए हैं। यह धारणा प्रचलित है कि मूल्यांकन से उपजी हुई ज़रूरतों को उपचारात्मक शिक्षण से पूरा किया जाना हैं। इस धारणा ने शिक्षण-शास्त्र व शैक्षिक नियोजन के लिए बड़ी समस्या खड़ी की है। इस उपचारात्मक शब्द को उन विशेष कार्यक्रमों तक सीमित रखे जाने की ज़रूरत है, जो दरअसल उन बच्चों की क्षमता विकास में मदद करते हैं, जिनको पठन/साक्षरता या अंकज्ञान वाले पहलू में समस्याएँ आती हैं। यह आवश्यक है कि शिक्षकों के लिए उपचारात्मक व निदानात्मक परीक्षण तैयार करने की योग्यता के लिए विशेष

प्रशिक्षण की व्यवस्था हो। यह एक बड़ा सवाल है कि परीक्षण पाठ्यपुस्तक-आधारित अधिगम का हो, रटे-रटाए बेकार तथ्यों का हो या सृजनात्मक क्षमता, रचनात्मकता और जिज्ञासा का। यह देखना महत्वपूर्ण है कि वस्तुतः आकलन की प्रक्रिया शिक्षार्थियों व शिक्षकों दोनों के लिए दबाव का काम कर रही है या उन्हें उनकी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सुधार की संभावना दे रही है। बहरहाल इन कुछ बिंदुओं के संदर्भ में निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के मूल्यांकन व परीक्षा संबंधी प्रावधान को देखा जा सकता है।

अध्याय 5, धारा 29, उपधारा(2) शिक्षा प्राधिकारी(1) के अधीन पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया अधिकथित करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखेगा — (ज) बालक के समझने की शक्ति और उसे उपयोग करने की उसकी योग्यता का व्यापक व सतत मूल्यांकन। 30(1) किसी बालक से प्रारंभिक शिक्षा समाप्त होने तक कोई बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करने की अपेक्षा नहीं की जाएगी। (2) प्रत्येक बालक को, जिसने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर ली है, ऐसे प्रारूप और ऐसी रीति में एक प्रमाण-पत्र दिया जाएगा, जो विहित की जाए।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम बालक के समझने की शक्ति व उसके उपयोग करने की योग्यता का आकलन करने पर ज़ोर देता है। इस अर्थ में यह अधिकार तथ्यों, सूचनाओं व रटे-रटाए ज्ञान की तुलना में दैनिक उपयोग व व्यावहारिक ज्ञान को महत्वपूर्ण मानता है। यह अधिकार बच्चों की सृजनात्मक क्षमता व उनकी जिज्ञासा तथा खोजपूर्ण प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देता है। बच्चों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करने की अपेक्षा यह अधिकार उनके दैनिक व व्यावहारिक जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना करने की उनकी योग्यता को महत्व देता है। सतत व समग्र मूल्यांकन, सार्थक मूल्यांकन माना जा सकता है। सतत मूल्यांकन, बहुआयामी मूल्यांकन है, जो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के हर चरण पर लगातार प्रतिपुष्टि के अवसर उपलब्ध कराता है। यह मूल्यांकन अपनी प्रवृत्ति में व्यापक है, जो शिक्षार्थी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू और उसके कौशल व दक्षताओं को अधिगम प्रक्रिया में समाविष्ट करता है। इस तरह परीक्षा से मुक्ति का प्रश्न वस्तुतः बच्चों को भयमुक्त व पक्षपात रहित वातावरण उपलब्ध कराने से जुड़ा हुआ है। परीक्षा का भय बालक के संज्ञानात्मक विकास को भी प्रभावित करता है और उसके भावात्मक विकास को भी। परीक्षा-केंद्रित पढ़ाई वस्तुतः बच्चों के संज्ञानात्मक दायरे और उनके समझने के स्तर को संकीर्ण बनाती है। कृष्ण कुमार के अनुसार "असल में तो हमारी परीक्षा प्रणाली जनता को धोखा देती आ रही है क्योंकि वह अपने अंदर उपस्थित गहरे भेदभावों को छिपाती है, जिसमें किसी उपेक्षित सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले एक गरीब बच्चे को अच्छे स्तर के, सुविधा संपन्न पब्लिक स्कूल के छात्रों के विरुद्ध प्रतियोगिता में उतारना पड़ता है। यह फूहड़ सच्चाई प्रतियोगिता के दौरान अपनाई जाने वाली कथित संपूर्ण समानता की झूठी चमक में बखूबी छिप कर रह जाती है। लेकिन इस तथ्य को जानने के लिए बहुत अधिक गहरी

खोज की ज़रूरत नहीं कि अधिकतर असफल छात्र वंचित वर्गों से ही आते हैं।" (यूएनडीपी, 1999)। प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक बोर्ड परीक्षा न लेने के प्रावधान द्वारा निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार, प्रारंभिक शिक्षा सबके लिए संभव करने और प्रकारांतर से एक समतामूलक समाज की स्थापना करने का प्रयास करता है।

इस तरह पाठ्यचर्या के संदर्भ में शिक्षा का यह अधिकार कतिपय ऐसे पहलुओं को समाविष्ट करता है, जो इसे शैक्षिक नीति से आगे का कदम बनाते हैं। व्यावहारिकता के संदर्भ में यद्यपि बहुत कुछ सीमाएँ हैं, जो इस कानून पर पुनरावलोकन की सार्थक अपील करती दिखती हैं। अभी हाल-फिलहाल में फेल न करने की नीति में होने वाले बदलाव की माँग को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। बहरहाल वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह ज़रूरी है कि शिक्षा के अधिकार कानून पर बेहद आलोचनात्मक तरीके से विचार-विमर्श किया जाए, जिससे इसे और अधिक सार्थक और प्रासंगिक बनाने में मदद मिल पाए। बावजूद इसके इसमें कोई शक नहीं कि शिक्षा के अधिकार को अपने आप में आधुनिक शैक्षिक विमर्श में एक बड़ा एवं महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है, जो शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिहाज से अपनी एक प्रगतिकामी भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ

एप्पल, एम. डब्ल्यू और जे.ए. बीन. 1999. *डेमोक्रेटिक स्कूल्स*. ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस, बकिंघम.

जीरु, एच. ए. 2005. *स्कूलिंग एंड द स्ट्रगल फ़ॉर पब्लिक लाइफ़ — कल्चरल पॉलिटिक्स एंड प्रॉमिस ऑफ़ डेमोक्रेसी.* पैराडाइम पब्लिकेशन, लंदन.

झींगरन, डी. 2005. *लैंग्वेज डिसएडवान्टेज — द लर्निंग चेलेंजेज इन प्राइमरी एजुकेशन*. ए.पी.एच. पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

ड्यूवी, जे. 1916. *डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन*. द मैकमिलन, न्यूयॉर्क.

पोलार्ड, ए. 2008. *रिफ़्लेक्टिव टीचिंग*. कोंटीनम, लंदन.

बोर्दियु, पी. और क्लाउड (संपा.). 1977. *रिप्रोडक्शन इन एजुकेशन, सोसाइटी एंड कल्चर*. सेज, लंदन.

भारत सरकार. 2009. *निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम. मानव संसाधन विकास मंत्रालय,* भारत सरकार, नयी दिल्ली.

माध्यमिक शिक्षा आयोग. 1952–1953. educationforallinindia.com>1953 पर देखा गया।

रा.शै.अ.प्र.प. 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. पृ. 14. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, भारत सरकार. 1964–66. https://m.bharatdiscovery.org पर देखा गया।

यूएनडीपी 1999, *पब्लिक रिपोर्ट बेसिक एजुकेशन इन इण्डिया*, नयी दिल्ली.

शर्मा, उषा. 2019. *माध्यम का सवाल और मातृभाषा*. विद्याश्री न्यास में दिया गया व्याख्यान, वाराणसी.